जलकुंभी

नज़्म सुभाष

नहरवल! हां यही नाम था उस गांव का। यहां के बुजुर्ग बताते हैं कि कभी यहां पर कई नहरें थीं जिससे पूरे क्षेत्र की सिंचाई होती थी। इसी वजह से इसका नाम नहरवल पड़ा। फिलहाल यहाँ ऐसी कोई विशेषता नहीं जिसके सम्मान में कलम तोड़ दी जाए सिवाय ऊबड़-खाबड़ सड़कें, गलियारों पर बहता नाली का गन्दा पानी, गांव के चारों तरफ तालाब जो अपने आप अस्तित्व में नहीं आये, लोगों ने घर बनाने के लिए मिट्टी निकाली तब बने। तालाबों के ऊपर फैली जलकुंभी जिसके अंदर सड़ता बारिश और घरेलू नालियों का गंदा पानी। ज्यादातर घरों में रहने वाले काहिल लोग, दिन-रात जमें रहने वाले जुंए के अड्डे, जिससे थोड़ी-थोड़ी देर पर उठते गाली-गलौज के ऊंचे-ऊंचे स्वर, जिन्हें गांव के लोग बड़े चाव से सुनते और उससे पूरे दिन की काहिली के फलस्वरूप जेहन में जड़ें जमा चुके अवसाद से निजात पाकर मजे लेते।

और इन सब के बीच शाम होते ही दारू की अवैध भट्ठियां धधक्ते हुए अपनी अजीब-सी दुर्गन्ध से पूरे गांव को अपने आगोश में लेकर झूमने को मजबूर कर देतीं। क्या छोटा, क्या बड़ा सभी उनकी शरण में आने को तत्पर रहते। भले ही ये अवैध भट्ठियाँ पूरे गांव के वातावरण में जहर घोलकर उसे पल पल मौत की आगोश में भेजने को व्याकुल हों मगर क्या मजाल है जो कोई इनके खिलाफ कोई शिकायत दर्ज कराये।

ये दारू की भट्ठियां उन निचली जातियों के घरों में चलती हैं जो करीब पांच साल पहले सौ-पचास रुपये में दूसरे के खेतों में इस उम्मीद से हाड-तोड़ मेंहनत करते थे कि शाम को परिवार के लिए रूखी-सूखी रोटी का ही सही जुगाड़ तो हो ही जाएगा। इन अवैध भट्ठियों के बारे में गांव के एक-एक बच्चे से लेकर करीब छह किलोमीटर दूर थाने पर भी सभी को खबर है, लेकिन जब थाने पर हर हफ्ते चढ़ावा चढ़ जाता है तो फिर क्या सही क्या गलत। पुलिसवालों का जब कभी मूड़ होता वो किसी आदमी को भेज देते।

वैसे गांव में लाख कमियों के बावजूद भी अगर कुछ आकर्षित करने वाला है तो वह है गांव में बना 'दुर्गा माध्यमिक जूनियर हाई स्कूल' जो यहां के स्व. प्रधान जी की याद को आज भी अपने दामन में समेंटे अत्यन्त सीमित साधनों द्वारा भी शिक्षा की स्वर्णिम ज्योति को चारों ओर जलाने में अग्रसर है मगर वह स्वयं भी इस मामले में कहीं

नज़्म सुभाष हिन्दी साहित्य के युवा कथाकार हैं। वर्तमान में इनका पता 356/केसी-208, कनक सिटी, आलमनगर लखनऊ है।

चूक गया है या उसकी दी हुई शिक्षा में कोई कमी रह गयी है जो यहीं के पढ़े हुए तमाम बच्चे अब या तो दारू की भट्ठी सुलगा रहे थे या हर रोज उन भट्ठियों की चौखट पर अपनी मखमली प्यास लेकर हाजिर होते।

अंधेरी रात की चादर ने पूरे गांव को अपने आगोश में समेंट लिया था। एकदम स्याह रात और हर तरफ कब्रिस्तान सा पसरा बोझिल सन्नाटा। कभी-कभी दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाज आ जाती थी या फिर सियारों की हुक्की हुआं..मगर कुत्तों के भौंकने और सियारों की हुक्की हुआं भी इस बोझिल सन्नाटे को वक्ती तौर पर ही मात दे पा रही थी ।

ठंड अपने पूरे शबाब पर थी। सभी अपने-अपने घरों में दुबके हुए शायद सो भी रहे होंगे मगर सजीवन की आंखों से नींद वैसे ही गायब थी जैसे ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं वाले शहर में छप्पर गायब हो चुके हैं । वह इस वक्त अपने पांवों को पेट के बीच में समेंटकर हाथ बांधे हुए लेटा है। जमीन पर बनाया गया पुआल और उसके ऊपर लगा जूट के बोरों का बिस्तर, ओढने के लिए एक पुराना कम्बल जो कहीं-कहीं से फट गया था। गन्ने के पत्तों से बनी मड़ैया के भीतर जब शीतलहर का झोंका उसके शरीर में सिहरन पैदा कर देता तब वह कुनमुनाकर फिर से कम्बल को ठीक से ओढने की कोशिश करने लगता। कम्बल शायद छोटा था, सर ढकता तो पैर खुल जाते और पैर ढकता तो सर। फिलहाल, उसके मस्तिष्क में इस समय एक अजीब-सा अन्तर्द्वन्द घमासान मचाये था। बावजूद इसके वह किसी ठोस नतीजे पर पहुंचे ऐसी स्थिति अभी तक न आयी थी। "आखिर उसे क्या करना चाहिए?" यही एक सवाल था जो लगातार उसके जेहन में बिजली की माफिक कौंध रहा था।

> मनरेगा जैसी योजनाएं भी मात्र कागजों में सिमटी हैं प्रधान गांव के ही लोगों को फर्जी मजदूर बनाकर एकाउंट में आये पैसे में से एक दो महीने का पैसा उन्हें देकर बाकी सब चट कर जाता है। लाखों रुपया आता है हर साल.. कहां जाता है.. सब इन्हीं हरामखोरों के पेट में। और तुम भूखे पेट आदर्शवाद की माला जपते हो। यथार्थवादी बनो सजीवन! अब वो वक्त नहीं रहा जो कोई तुम्हें रोटी देने आयेगा। रोटी तुम्हें खुद छीननी पड़ेगी...कैसे भी, अगर नहीं छीन सकते तो भूखे मर जाओगे।'

दरअसल हुआ ये कि आज सुबह गांव के राजाराम ने उसे अपने घर पर बुलाकर उसके सामने प्रस्ताव रखा कि यदि वह उसकी बनायी हुई दारू ग्राहकों तक पहुंचाये तो बदले में वह उसे दस रुपये प्रति बोतल कमीशन देगा। उसने ऐसा घटिया काम करने से मना कर दिया तब राजाराम ने उससे कहा कि वह इस बारे में सोच-समझ कर फैसला करे आखिर दस रुपये प्रति बोतल कोई घाटे का सौदा नहीं। वह इस समय इसी उधेड़बुन में था। क्या वह दारू बेचने का काम कर ले? मगर क्या उसका हृदय ऐसे घिनौने काम की गवाही देगा जहाँ लाखों लोग दारू की चपेट में आकर अपना घर बरबाद कर देते हों बीवी-बच्चों को मारते-पीटते हों और जरा-जरा सी बात में गाली-गलौच करते हैं। उसने खुद कई औरतों को फांसी लगाते या ज़हर खाकर मरते देखा है। अभी रामसुहावन की औरत ने इसी चक्कर में जहर खा लिया था । आखिर रोज-रोज की हाय-हाय; किचकिच कब तक सहती....ये तो अच्छा था प्रधान ने अपने रुतबे का प्रयोग करके पंचनामा करवा दिया अन्यथा ससुरालियों ने तो हत्या का मुकदमा दर्ज कराने की पूरी कोशिश की थी।

वह सोच ही रहा था कि उसकी दबी कुचली इच्छाओं ने उसकी हंसी उड़ाई। उसे लगा जैसे कोई उससे कह रहा है- बहुत आदर्शवादी बनते हो, ये फटे बोरों के ऊपर सर्द रात काटना, अपनी बेबसी पर आंसू बहाते कम्बल में अपने अस्तित्व को समेटना बहुत अच्छा लगता होगा क्यों संजीवन? तुम्हें दूसरों की तो बहुत चिन्ता हो रही लेकिन तुम्हारी चिन्ता है किसी को...?

"किसी को नहीं..." उसे स्वयं से ही जवाब मिला था।

क्या अबतक किसी ने पूछा कि तुमने कुछ खाया है या भूखे ही लेटे हो...। प्रचंड शीतलहर में ये जर्जर मड़ैया तुम्हारा अस्तित्व अगर बचा भी पाएगी तो कब तक? कहीं ऐसा न हो कि भूख और शीतलहर से तुम भी किसी दिन सर्द हवा की तरह ठंडे हो जाओ। क्या मरना चाहते हो?

'नहीं...नहीं, मैं मरना नहीं चाहता... अभी मेरी उम्र ही क्या है मात्र तीस साल।' जैसे ख्वाब से जागा हो वह, इतनी सर्द रात में भी उसके माथे पर पसीना चुहचुहा आया।

'तो फिर क्यूं नहीं मान लेते राजाराम की बात?'

'लेकिन मैं ऐसा काम नहीं कर सकता।'

'मगर क्यों? जानते हो तुम्हारे जैसे लोगों के लिए सरकार ने कई योजनाएं चलायीं लेकिन किसी योजना का फायदा मिला तुम्हें...नहीं न...कभी नहीं मिलेगा। अरे! गरीबी रेखा से नीचे वाला राशनकार्ड तक तो बना नहीं तुम्हारा...जानते हो क्यूं? क्योंकि प्रधान की नज़रों में तुम गरीब नहीं, और चार गांव आगे वाला धनीराम जिसके पास सत्तर बीघा खेत है वह गरीब है...

उसके पास है गरीबी रेखा से नीचे वाला राशन कार्ड। तुमने भी तो कई बार उनके खेतों में बेगार में काम किया दिन भर हाड तोड़ मेहनत की लेकिन क्या बना तुम्हारा राशन कार्ड और क्या उन्होंने बनावाया?

मनरेगा जैसी योजनाएं भी मात्र कागजों में सिमटी हैं प्रधान गांव के ही लोगों को फर्जी मजदूर बनाकर एकाउंट में आये पैसे में से एक दो महीने का पैसा उन्हें देकर बाकी सब चट कर जाता है। लाखों रुपया आता है हर साल.. कहां जाता है.. सब इन्हीं हरामखोरों के पेट में। और तुम भूखे पेट आदर्शवाद की माला जपते हो। यथार्थवादी बनो सजीवन! अब वो वक्त नहीं रहा जो कोई तुम्हें रोटी देने आयेगा। रोटी तुम्हें खुद छीननी पड़ेगी...कैसे भी, अगर नहीं छीन सकते तो भूखे मर जाओगे।'

घंटों चले विचारों के अन्तर्द्वंद ने उसे यथार्थवादी बना दिया। अब वह भूखा नहीं मरेगा। नहीं चाहिए उसे मुफलिसी पर आंसू बहाती जर्जर मड़ैया...नहीं चाहिए उसे बोरों का बिस्तर। अगर वह ग्राहकों तक दारू नहीं पहुंचायेगा तो कोई और पहुंचायेगा। फिर वह क्यूं नहीं? बहुत दिन भूखा मर चुका वह, अब नहीं मरेगा।

अन्धेरा छंट रहा था। सुबह होने वाली थी ... और उसके हृदय का अन्धेरा ... वो भी छंट चुका था। अब उसकी जिन्दगी में भी एक नयी सुबह होगी इसका उसे यकीन था।

आज वह चालीस बोतलें ग्राहकों को बांटकर आया था। सौ-सौ के चार नोट जेब में पड़े थे। कितनी गर्माहट महसूस हो रही थी उसे.. महसूस हुआ जेब की गर्माहट के साथ उसके लहू में भी नयी ऊर्जा का संचार हो चुका है। चार सौ रुपये... बिना किसी खास मेहनत के... अबसे पहले वह सौ-पचास रुपये में दूसरे के खेतों में हांड-तोड़ मेहनत करता था। अब थूकेगा भी नहीं खेत मालिकों के ऊपर... अगर वह यूं ही एक साल तक काम करता रहा तो अपनी मड़ैया की जगह पक्का मकान बनवा लेगा। अब उसकी भी किस्मत बदलने वाली थी।

वाकई में उसने जो सोचा था कर दिखाया। उसके पास अच्छी-खासी धनराशि एकत्र हो चुकी थी। उसने एक पक्का कमरा बनवा लिया था रहन-सहन भी एकदम बदल गया। जहां पहले वह हवाई चप्पलों की भी कई बार मरम्मत करवाता था वहीं अब उसके पैरों में चमड़े के जूते देखे जा सकते हैं। अब वह एक दिन में ही पांच छः सौ रुपये कमा लेता है वो भी बिना किसी खास मेहनत के....।

दरअसल यह दारू सस्ती भी थी और इसकी तीव्रता भी बहुत ज्यादा थी। इसी वजह से पियक्कड़ इसे ही ठेके वाली शराब की अपेक्षा तरजीह देते। जिसके फलस्वरूप वह लगातार बुलंदियों पर चढ़ता रहा।

उसे यह काम करते हुए लगभग एक साल पूरा होने वाला था। आज के दस दिन बाद होली है। उसे दारू के आर्डर पहले से ही मिलने लगे थे। आज भी उसे अस्सी बोतल का आर्डर मिला है, आधे पैसे एडवान्स में ही मिल गये। आधे माल पहुंचाने के बाद मिलेंगे। होली में दारू की खपत कुछ ज्यादा ही होती है। यूं तो इसकी तमाम वजहें हैं मगर सबसे बड़ी वजह है हुडदंग....होली वाले दिन गले तक दारू भरे लोगों की कुंठा देखते ही बनती है। इनकी कुंठा से शायद ही कोई छूटता हो। उसे याद आता कि कैसे होली के दिन अधिकतर पियक्कड़ गांव की मुख्य सड़क पर झुंड बनाकर इकट्ठा होते और जो भी उधर से निकलता उसे रंगों से सराबोर कर देते। खासकर महिलाओं को देखते ही इनकी लार बहने लगती। सालभर की दबी हुई कुंठाएं उफान मारने लगतीं। ऐसे में महिला के साथ का आदमी भले ही हाथ-पैर जोड़े और गिड़गिड़ाए कि हमें चाहे जितना रंग लगा लो बस औरतों को बख्श दो मगर शायद ही कोई पियक्कड़ इनकी करुण पुकार सुनता हो बल्कि यह कहा जाए तो ज्यादा सही होगा कि उसकी गिड़गिड़ाहट पर इन्हें और मजा आता। और ये किसी शिकारी की तरह झुंड के जाल में फंसी महिला के साथ क्या-क्या न कर डालते .....कभी छाती दबा दी तो कभी गुप्तांगों में ऊपर से ही उंगली घुसेड़ दी.....तो कई बार मारपीट तक...यहां तक कि दस बारह साल की बच्चियों के साथ भी यही सब.....और साथ वाला आदमी जो किसी का पति होता किसी का भाई या पिता...तमतमाता जरूर मगर इस झुंड का मुकाबला अकेले वो कैसे करे? थोड़ा-बहुत हाथ पैर चलाता भी तो मारा जाता...अगर महिला कहती कि उसके साथ बत्तमीजी हुई है तो लोग पूछते क्या?

> मथुरा का इशारा पाते ही उसके पूरे जिस्म पर लाठियां बरसने लगीं और वह जानवरों की तरह चिल्लाता रहा। उसने लाख कहा कि उसका कोई कसूर नहीं। उसने किसी को ज़हर नहीं दिया। उसने तमाम कसमें खा डालीं कि वह भविष्य में फिर कभी दारू न बेचेगा मगर जिस घर के दो-दो चराग अभी-अभी बुझे हों वो भला इन कसमों की क्या कद्र करता लिहाजा उसकी न किसी को सुननी थी न किसी ने सुनी।

अब इन गले तक दारू चढ़ाये और आंखों से ही मादा देह का बलात्कार करने को आतुर लाल डोरे वाले लफंडरों के

बीच वह इस "क्या" का क्या जवाब दे....दो चार जद्दबद्द गालियां- कि 'अपनी महतारी-बहिनिया से पूछ' के सिवाय उसके पास कोई उत्तर न होता मगर उसकी बेबसी आंखें जरूर बयां करती रहतीं। मगर गांव वालों के लिए यही तो दिन होता जब वह अपनी कुंठाओं का होली के बहाने सार्वजनिक प्रदर्शन कर पाते थे लिहाजा नशे के सुरूर की तैयारी जरूरी थी।

अभी चार दिन पहले ही पुलिस वाले अपना हिस्सा ले जा चुके हैं। राजाराम ने उसे कल ही बताया था। अब उसे कोई डर नहीं बेखटके गांक्गांव सप्लाई करेगा। इस बार उसे भी हफ्ते भर में सात-आठ हजार रुपये कमा लेने हैं। पिछली बार तो चार हजार ही कमा पाया था मगर तब वह नया था। अब तो वह खिलाड़ी हो चुका है। लेटे-लेटे वह यही सब सोच रहा था कि दरवाजे पर दस्तक हुई।

'कौन है?' अन्दर से ही पूछा था उसने। इस वक्त रात के करीब बारह बज रहे थे।

'हम मथुरा।' बाहर से आवाज आयी।

उसने दरवाजा खोला मगर ज्यूं ही वह बाहर निकलकर आता उससे पहले ही दो आदमियों ने उसका शर्ट पकड़कर उसे बाहर खींच लिया। वह जमीन पर गिरते-गिरते बचा।

'ये क्या बदतमीजी है?' घूरते हुए बोला था वह।

"चटाक्" एक थप्पड़ उसके गालों पर पड़ा।

'चल मेरे साथ'

दूसरे आदमी ने उसके कान पर देसी कट्टा लगा दिया।

'ये ... ये... क्या तरीका है... कहां ले जा रहे हो मुझे? आखिर मेरा कु...सूर क्या है?'

वह तीन आदमियों से घिरा होने के बावजूद समझ नहीं पा रहा था कि एकदम से आखिर हो क्या गया है। अलबत्ता उसे इतना यकीन हो चुका था कि जरूर कुछ गलत होने वाला है। वह चाहता था भाग ले मगर कैसे? अगर भागता भी तो किसी भी समय गोली उसके शरीर के पार निकल जाती।

'कसूर... पूछता है साला... बताता हूं... पहले साथ तो चल...।' उनमें से एक गुर्राते हुए बोला।

'मगर इतनी रात को कहां ले जा रहे हो... दादा...कौन सी गलती हो गयी मुझसे? तुमने आज दारू मंगायी थी और आज ही हमने घर पहुंचा दी। फिर क्यूं?'

गला रुंध गया था। आंखों से आंसू छलक आये। उसे मालूम था कि मथुरा बहुत खतरनाक आदमी है, दो-दो कत्ल कर चुका है। आज वह उसके चंगुल में आया है तो जरुर कुछ न कुछ होना है।

'साले! ज्यादा चूं-चप्पड़ करेगा तो गोली मार दूंगा... चुपचाप चल...'

मथुरा दांत पीसते हुए बोला।

उसने चुपचाप उनके साथ चलने में ही भलाई समझी। आधा घंटे बाद जब वह उनके गांव भीखमपुर पहुंचा तो रोने की आवाजें आ रही थी। उसके घर के बाहर तमाम भीड़ इकट्ठा थी। बोटी-बोटी कांप उठी उसकी। मथुरा ज्यूं ही उसे लेकर भीड़ के पास पहुंचा भीड़ तितस्बितर हो चुकी थी। सामने का दृश्य देखकर उसकी आंखें फटी की फटी रह गयी। मथुरा के दोनों लड़के मरे पड़े थे। तभी उसे पीछे से एक लात पड़ी।

"धड़ाम" की आवाज के साथ... वह जमीन पर गिर पड़ा। जैसे ही वह गिरा मथुरा की पत्नी ने चीखना शुरू कर दिया- "मार डाला इस हरामी ने मेरे दोनों लड़कों को... हरामी...दहिजार....मार डाला...मेंरी गोद सूनी हो गयी... कुत्ते तुझे दोजख में जगह न मिले...कीड़े पड़ें... कोढ़ फूटे..."

वह सजीवन के गालों पर थप्पड़ों की बरसात किये जा रही थी। सजीवन चुपचाप बैठा जाने कहां खो गया था। उसकी आंखें जैसे पथरा गयी थीं। उन थप्पड़ों का उस पर कोई असर नहीं था।

'क्या किया जाये दादा...इस कमीने का।' उनमें से एक आदमी चीखा। ठंड के दिनों में भी लोग इकट्ठा थे। कानाफूसी चालू थी।

कोई कहता- "इसे इतना मारो कि तड़प-तड़प कर मर जाये.. खुद अपनी मौत मांगे..."

कोई कहता- "पुलिस के हवाले कर दो। जब जेल की चक्की पीसेगा तब समझ में आयेगा। जहर बेचता है साला.. बरबाद करके रख दिया है पूरी चौहद्दी को।"

'मरना तो पड़ेगा ही इसे। मेरा पूरा बंश नास करके रख दिया।'

मथुरा भले ही सुबक-सुबक कर रो रहा था मगर आंखों में किसी घायल शेर की तरह अंगारे दहक रहे थे।

'नहीं दादा....ऐसा..म..त करो... मैंने दारू में ज़हर नहीं मिलाया...मैं... मैं तो सिर्फ दारू पहुंचा जाता हूं बनाता तो राजाराम है। मुझे छो...ड़ दो मैं... बे..कु.. सूर हूं.. मैंने.. न ... हीं... मारा इनको... मेंरी... तो दुश्मनी भी नहीं... किसी से। मुझे.. छो..ड़ दो आपके पैर पड़ता हूं।' मथुरा के पैरों से लिपट गया था वह।

"भड़ाक्" उसके पेट पर एक जोरदार लात पड़ी तो हृदय विदारक चीख निकल गयी। उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे पसलियां

पीठ में धंस गयी हैं..आंखों के सामने लाल-पीले दायरे गर्दिश करने लगे थे।

मथुरा का इशारा पाते ही उसके पूरे जिस्म पर लाठियां बरसने लगीं और वह जानवरों की तरह चिल्लाता रहा। उसने लाख कहा कि उसका कोई कसूर नहीं। उसने किसी को ज़हर नहीं दिया। उसने तमाम कसमें खा डालीं कि वह भविष्य में फिर कभी दारू न बेचेगा मगर जिस घर के दो-दो चराग अभी-अभी बुझे हों वो भला इन कसमों की क्या कद्र करता लिहाजा उसकी न किसी को सुननी थी न किसी ने सुनी।

लगातार लाठियां बरसती रहीं तड़ातड़.अब तो वह कराह भी न पा रहा था। कहर ढा रही इन लाठियों के बीच खून से लथपथ उसका जिस्म पिटता रहा और कुछ देर बाद वह निर्जीव हो गया।

लाठी भांजती भीड़ का जब गुस्सा शांत हुआ तो उसे होश आया कि सजीवन तो कब का मर चुका है।

"दादा अब क्या किया जाए?" अचानक किसी ने मथुरा से मुखातिब होकर कहा।

"इसकी लाश अगर यहां बरामद होगी तो हम सब फंसेंगे" मथुरा ने लाश को हिकारत से देखकर थूकते हुए कहा।

"फिर आप ही बताइए क्या करें?"

"इसकी लाश को ले जाकर इसके गांव के किनारे तालाब में डाल दो। लोग यही समझेंगे दारू पीकर उसमें गिर गया होगा।"

सुझाव वाजिब था। रात के सन्नाटे में तीन लोग लाश ठेलिया में लादकर ले गए और तालाब में फेंक दिया। फेंकते ही जलकुंभी काई की तरह फट गई और छपाक् की आवाज के साथ लाश पानी के अंदर.....।

"कफन भी नहीं मिलेगा साले को!"

एक ने दांत पीसते हुए कहा तो बाकी दोनों ने सहमति में सिर हिला दिया। ये और बात है कि जलकुंभी ने शायद उनकी बातें सुन ली थी। उसे लाश पर दया आई और उसने एकाएक लाश को अपनी हरी-हरी पत्तियों से ढक लिया। मानो लाश पर सफेद की बजाय हरा कफन ओढ़ा दिया गया हो। मौत एक शाश्वत सत्य! कोई इसके अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगा सकता मगर यह मौत.....?
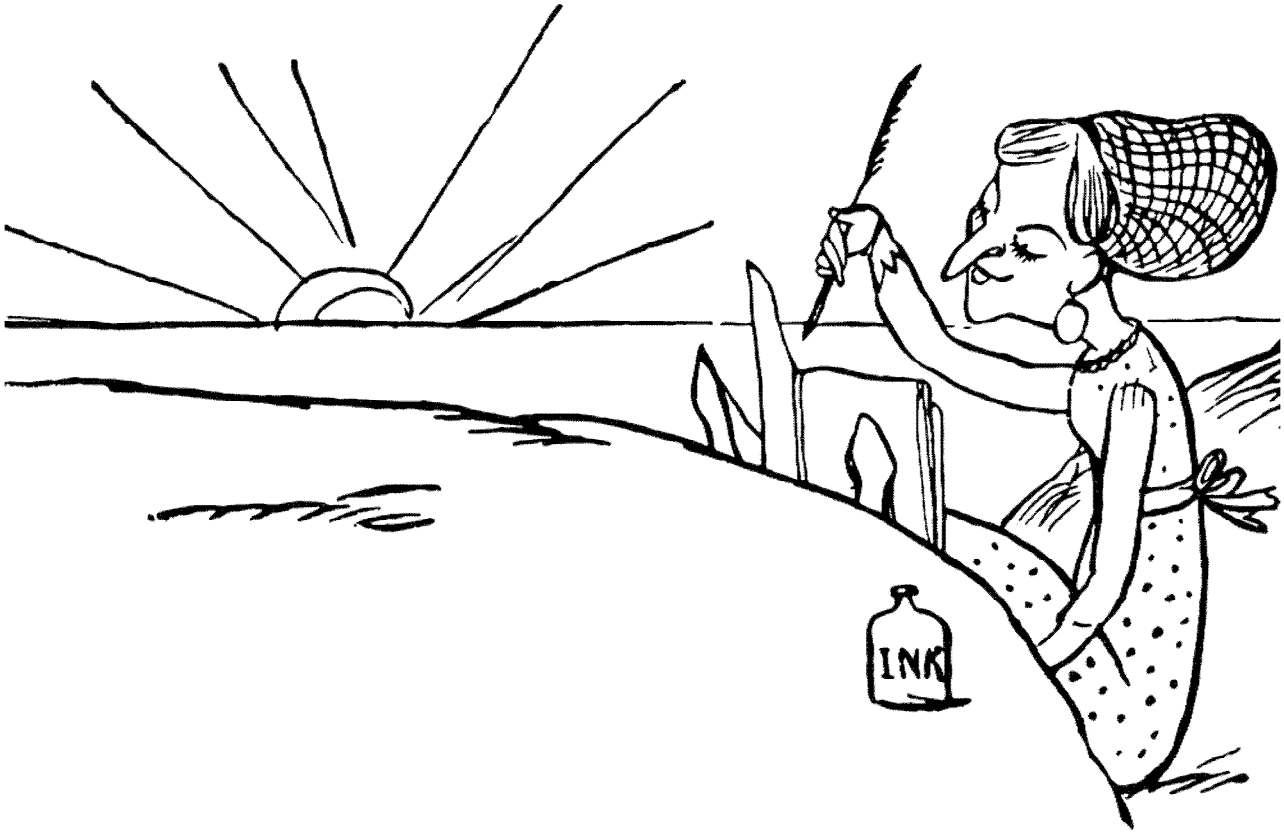
तीन दिन बीत चुके हैं। सजीवन की किसी को कोई खबर नहीं है। तालाब से सड़ी लाश की दुर्गंध उठने लगी है मगर दारू की भट्ठियों से उठने वाली दुर्गंध में वह दबकर रह जाती है। आखिर कौन है उसकी मौत का जिम्मेदार? अवैध दारू की भट्ठियां! न न.....वह तो आज भी शाम ढलते ही अपने शबाब पर होती हैं। अगर आप पीना चाहें तो नहरवल में आपका स्वागत है।